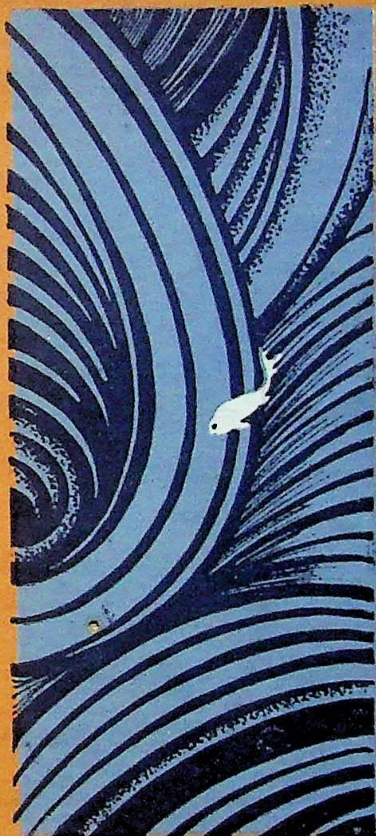
मछलीघर



विजयदेवनारायण साही



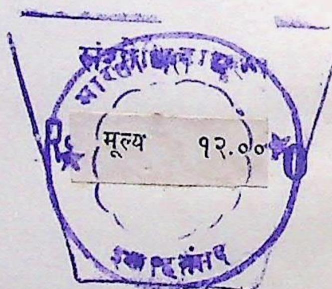
Purchased in Delhi
Feb. 1947

मछलीघर

विजय देव नारायण साही



ग्रन्थ संख्या	२४१
प्रथम संस्करण	सन् १९६६
●	
मूल्य	[redacted]
●	
प्रकाशक	भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
●	
मुद्रक	बलवन्तराम मेहता लीडर प्रेस, इलाहाबाद



Purchased at Delhi
Feb – March – 1987

'अज्ञेय' को
जिन्होंने हिन्दी कविता को
एक बार फिर सम्भव बनाया,
परवर्तियों के आभार सहित ।



भूमिका के नाम पर

पुस्तक प्रकाशित करने में मैं अब तक बड़ा संकोची रहा हूँ। मनोविज्ञान की भाषा में शायद यह भी कोई मनोग्रंथि हो। मेरे लिए तो इसके पीछे कुछ तो काहिली और कुछ साहित्य के प्रति अतिरिक्त आदर-भावना ही थी। इस संग्रह की मुद्रण-प्रति तैयार करने में मुझे कई बार अपने स्वभाव से संघर्ष करना पड़ा है।

पहला काव्य-संग्रह प्रस्तुत करते समय कवि को जितना गुमनाम होना चाहिए उतना मैं नहीं हूँ। जिनके हाथों में इस पुस्तक के पड़ने की सम्भावना है, वे कुछ आशंका या आशा के साथ ही इन पृष्ठों को पढ़ेंगे। उनकी आशंका या आशा पूरी होगी, इसमें मुझे बहुत सन्देह है। क्योंकि इन कविताओं में मैंने भी ख़ुद को कई बार अपरिचित पाया है।

अपनी कविताओं के बारे में कुछ कहना कठिन काम है। फिर जब आदमी औरों पर काफ़ी लिख चुका हो तब तो और भी कठिन है। इतना ही कहना चाहूँगा कि औरों की तरह मैंने भी भीतर चलते हुए उस आन्तरिक एकालाप को पकड़ने की कोशिश की है जो आज के इस अनैतिक और विश्रृंखल युग में बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी की तरह महसूस होता है। यह एकालाप कविताओं का ही निर्माण करे, कवि के व्यक्तित्व का नहीं, यही आदर्श मैं ने अपने सामने रखा है। शायद इस आदर्श को निभा सकना सबके भाग्य की बात नहीं होती। वैसी सीमा मेरी कहाँ है यह काफ़ी लिखने के बाद ही समझ पाऊँगा, जिसकी सम्भावना कम दिखती है। फ़िलहाल इन कविताओं के पाठकों से मेरा निवेदन यही है कि हर कविता को अलग अलग कृति मान कर ही पढ़ें।

जितना मैं ने अब तक लिखा है वह सब इस संग्रह में शामिल नहीं कर रहा हूँ। पहले की कुछ कविताएँ 'तीसरा सप्तक' में संग्रहीत हैं। वे भी इस संग्रह में नहीं हैं।

अन्त में मैं श्री वाचस्पति पाठक को बहुत धन्यवाद देना चाहूँगा। उनकी अथक प्रेरणा न होती तो मैं अभी भी इस असमंजस में होता कि इस संग्रह का प्रकाशित कराना उचित भी है या नहीं।

इलाहाबाद
२० फरवरी १९६६

अनुक्रम

सामने, आस पास, पीछे

एक दिन न जाने क्यों
तुम एक चढ़ी हुई प्रत्यंचा की तरह
तन गए
और तुम्हारे ऊपर से
हल्की टंकार के साथ
एक तीर छूटा
सामने, अन्तरिक्ष की ओर।

जब भी तुम आँखें उठाओगे
तुम्हें सामने वह तीर
जाता हुआ दिखाई देगा—
उसका कोई लक्ष्य नहीं है
क्योंकि जो कुछ भी उसके आगे पड़ता है
आकाश की तरह रास्ता दे देता है
वह केवल जाता रहता है
उजला, जगमगाता।

सिर्फ़ एक तीर।

इसके बाद तुम्हारी प्रत्यंचा का
कोई उपयोग नहीं
क्योंकि तुम्हारे पास
दूसरा तीर नहीं है ।
तुम चाहो तो हल्की टंकार
अब भी सुन सकते हो
लेकिन वह तीर
तुम्हें हमेशा ज्यों का त्यों दिखाई देगा
जाता हुआ...
सिर्फ़ जाता हुआ ...

मरे हुए पक्षी की तरह
वह हमेशा तुम्हारे पैरों के पास
पड़ा रहता है
और तुम्हारे बोलते ही
फिर बोलने लगता है ।
तुम कभी भी
उससे छुटकारा नहीं पा सकते ।

कोशिश कर देखो
जब तुम चट्टान पर खड़े हो कर
निर्जन पर्वतमालाओं को पुकारोगे
वह तुम्हारे साथ बोलेगा ।
बहुत दूर चले जाने के बाद
जब तुम सिर झुका कर बैठोगे
वह तुम्हें फिर पैरों के पास
पड़ा हुआ दिखेगा,
और तुम उसके रंगीन पंखों को
एक एक करके गिनोगे ।

तुम चाहो तो
उसे हाथ में लेकर
उसके नरम शरीर को
सहला सकते हो
लेकिन उसकी गरदन लटकी रहेगी
और पंजे सिकुड़े रहेंगे ।

तुम्हें याद नहीं
तुमने कब इसका शिकार किया था
लेकिन तब से ही
यह तुम्हारा सहचर है
और तुम बार बार अकेले पड़ कर
इसे देखने आ जाते हो ।
समवेत नृत्यों में
जब तुम औरों के साथ
तन्मय हो जाते हो

वह नहीं दिखता
और तब तुम सोचते हो
कि क्या अब भी वह
तुम्हारे एकान्त में बोलते ही
फिर जीवित हो जाएगा ?

तुम बार बार लौट आओगे
और उस मिट्टी को कुरेदोगे
जहाँ वह थाल भर फूल की तरह
उग आता है
और तुम ख़ुद नहीं जानोगे
कि तुम क्या देखना चाहते हो
क्योंकि तुम्हें ज़िन्दगी और मौत के अतिरिक्त
शब्द नहीं दिये गए हैं
ज़िन्दगी और मौत के अतिरिक्त...

एक काली चट्टान है
जिस पर बेतहाशा धारा
अपना सिर पटकती है
लेकिन हिला नहीं पाती
सिर्फ़ चट्टान रह रह कर
धुल जाती है
और उसके भीगे कलेवर से
हज़ार सूरज चमकते हैं
तुम उससे कतरा कर
निकल नहीं सकोगे
बार बार मुड़कर देखोगे
और कोई न कोई चकाचौंध सूरज
तुम्हें पीछा करता जान पड़ेगा ।

वहाँ भी
जहाँ चीड़ के ख़ामोश वन हैं
और सान्त्वना देने वाली हिम चोटियाँ हैं
जहाँ नदी का शोर नहीं पहुँचता
वहाँ भी तुम्हें लगेगा
कि पीछा करने वाले जानवर की तरह
कोई तुम्हारे पीछे आ रहा है।
रह रह कर
टहनियों के चरमराने की आवाज़ आयेगी
और लगेगा
कि लताओं में अदृश्य कोई
रुक कर साँस लेता है ।
सामने ढलते सूरज की रोशनी में

निर्विघ्नता का प्रतीक तुम्हारा कुटीर
शिखर पर सँवलाया हुआ दिखेगा
लेकिन तुम चाहते हुए भी
कठिन चढ़ाई के कारण
अपनी रफ़्तार तेज़ नहीं कर सकोगे
और किसी को पुकार नहीं सकोगे ।

आँखें बन्द करने पर
तुम्हें फिर वही काली चट्टान दिखेगी
जिस पर बेतहाशा धारा
अपना सिर पटकती है ।

अँधेरे गोलार्द्ध की रात

आज की रात
मैं फिर अकेला छूट गया हूँ
इस अँधेरे गोलार्द्ध में
जहाँ वेगवान नदियाँ हैं, जंगल हैं
गुप्त बरफ़ीले शिखर हैं
और समुद्र से समुद्र तक दौड़ती हुई हवा है।
आज मुझे फिर लग रहा है
कि मैं आकाश के विराट ढक्कन के नीचे
बन्द कर दिया गया हूँ
और मेरे साथ पर्वत, नदियाँ और समुद्र भी।
और मैं गुफा में से
डरी हुई प्रतीक्षारत, अचूक आँखें खोले हुए
इस आदिम अंधकार को तौलने की कोशिश कर रहा हूँ
मैं इस ब्रह्माण्ड का विश्वास नहीं करता
इसकी रातें विशाल हैं
और नहीं जानतीं कि मैं उन्हें देख रहा हूँ;
लेकिन मैंने इसे इसी तरह चक्कर खाते देखा है
और कभी कभी सहमती उँगलियों से
छुआ भी है:

उतराई हुई मछली की तरह ।

यह गुज़रता जाता है
निरपेक्ष, आत्मस्थ, पराया :
उदाहरण के लिए
हवा इस तरह चलती है
जैसे पेड़ों से लगातार पानी बरसता हो :
कुछ होता नहीं
सिर्फ़ पत्तियाँ करवट बदलती हैं ।

कहीं इसमें दुर्बलता होगी, इस ब्रह्माण्ड में,
जहाँ से यह विद्ध होगा;
आज रात फिर
मैं उस बिन्दु की तलाश में
एकाग्र देख रहा हूँ;
और गुफा के बाहर से
मेरी आँखें
दो चौकन्ने बिन्दुओं की तरह
चमक रही हैं...

मछली घर

मैं तुम्हें निमंत्रित करता हूँ
कि मेरे साथ इस कल्पित खिड़की तक आओ
और ठण्डे काँच की इस दीवार को
होठों से छुओ
यह स्पर्श तुम्हें परिशोधित कर देगा
ऊँचे शिखर की हवा की तरह ।

खिड़की के पार
तुम्हें अपनी ओर ताकती हुई
दो आसमान सरीखी आँखें दिखेंगी
और जैसे जैसे तुम
नीचे से ऊपर टटोलते हुए
दीवार के सहारे उठोगे
वे आँखें तुम्हारे साथ उठेंगी ।

अब तुम वापस चले जाओ
और नीची निगाहों से
इस बन्द कमरे में खिले हुए
नाज़ुक फूलों, सफ़ेद सीपियों और सदाबहार पत्तियों के बारे में
विचारते रहो :

कोई आतुरता नहीं है
क्योंकि निगाह उठाने पर
उस पार वे दोनों आँखें तुम्हें बराबर दीखेंगी
निर्निमेष...
और तुम जब चाहोगे
धीरे धीरे इस ठण्डे काँच की दीवार के सहारे
तृषाहीन आकर टिक जाओगे
परिशोधित ।

सिन्दबाद

कल्पित आकाशों पर उड़ते हैं पक्षी दूर...दूर
बहता हुआ आता है राशि राशि समुद्र फेन
द्वीप को ढँके हुए ऊँचे पहाड़ों की अचल पीठ
जिनकी चोटियों से रह रह कर
उझक आते हैं डैने चलाते हुए विशाल पक्षी
धूप भरे आकाश में चक्कर काटते हैं
कहीं और उड़ जाने के पूर्व...

फेंटे में कसे हुए जवाहर...
मैं चारों ओर फैले हुए समुद्री पानी को देखता हूँ
उठता गिरता
और जहाज़ियों के बेतहाशा दमामे की आवाज़ सुनता हूँ।

खोये हुए यात्री की यात्रा

आज बरामदे में बैठा बहुत देर तक
न जाने कैसी याद करता रहा :

गोद में खुली हुई किताब
और आसमान पर ऐंठे हुए बादल
याद के नाम पर
सिर्फ एक तल्लीनता

ठहरे हुए समुद्र में
अकेली यात्रा—
गुम, बिल्कुल गुम, यात्री की ।

जाने कितनी देर बाद जब वापस लौटा
तब तक बादलों की शक्ल बदल चुकी थी :
वह जो सहजन की फुनगी पर ऊँट का बच्चा था
खरगोश बन चुका था
वह जो कंगूरे के पास का टापू था
रेगिस्तान बन चुका था

वह जो मुँडेर के ऊपर खेल का मैदान था
सिमट कर ऊन का गोला बन चुका था

फ़र्श पर चुपचाप
जैसे चींटी रेंगती है
वैसे ही वक़्त गुज़रता जाता है

विस्मृत विषाद-ग्रन्थि

दिन हैं आत्मीय और सधा हुआ जीवन क्रम।

कभी कभी
आँगन के ऊपर आकाश में
भटके से बादल के टुकड़े कुछ
अकस्मात् आते हैं, तिरते हैं
कुछ क्षण कसे रह कर
ओझल हो जाते हैं :

नीचे के जीवन में
कुछ भी बदलता नहीं
वही उजियाली धूप
खुली हुई दोपहरी
फुनगी पर फूली हुई चिड़िया अनुभूति-मग्न
बाहर से आती हुई
मिली जुली नर्म नर्म आवाज़ें, खामोशी
और वही
बरसों से मानी हुई विस्मृत विषाद-ग्रन्थि।

शान्त इस जीवन में
मीलों की दूरी से कभी कभी
सुनने में अकस्मात् इतना आ जाता है
तुमने किसी उड़ते संदर्भ में
नाम मेरा लिया था
क्षण भर को
कहीं एक
डूबा हुआ प्रश्न
उठता है, तिरता है, ओझल हो जाता है।

कुछ भी बदलता नहीं।

सन्दर्भहीन बारिश

...बारिश...बारिश...बारिश

इस सुनसान बारिश का कोई नाम नहीं है
और न उस आवाज़ का ही
जो घास पर पड़ती हुई बूँदों से
पैदा होती है
सिवा इसके कि मुझे महसूस होता है
कि इस आवाज़ को मैं
आजीवन सुनता रहूँगा
और इसमें कभी कोई फ़र्क़ नहीं पैदा होगा।
हज़ारों खिड़कियों पर
लोग हाथ पर हाथ धरे
दिन डूबने का इन्तज़ार कर रहे हैं
और उन्हें भी लग रहा है
कि आज जो वे हो गये हैं
सचमुच कल भी वे वही थे।
और इसी तरह
लगातार ज़मीन और आसमान को मिलाने वाली
नीरस बारिश होती रहेगी
जिसके बाद कुछ करने को

शेष नहीं रह जायेगा
जिस तरह हरारत की धारा बहते बहते
एक सपाट सन्तुलन पर पहुँच जाती है
फिर कुछ भी घटित नहीं होता ।

बेशक मैं उन लोगों में से हो गया हूँ
जिनके पास करने को कुछ भी नहीं
सोचने को बहुत है ।
एक बार खिड़की पर क़ैद
तुमने और मैंने
सिर्फ़ चिन्तन की पोली शहतीरें फेंक कर
खुले आसमान तक
अदृश्य सुरंग बनाने की कोशिश की थी
जिसके भीतर हम चुपचाप फ़रार हो सकें
और उस सुरंग के रास्ते
सुनसान कमरे में
सुनहरे सफ़ूफ़ की तरह रोशनी आयी थी
जिसके आवरण में
तुम समूचे खड़े हो गये थे
तुम्हारे बाल प्लैटिनम की तरह चमक रहे थे
और तुम्हारी आँखें अपरिचित हो गयी थीं

मैंने पूछा था : तुम कहाँ हो ?
तुमने कहा : मैं इतिहास के बाहर चला गया हूँ ।
फिर हमने
इस घटना का कभी ज़िक्र नहीं किया ।

लेकिन मैं उन लोगों में से हो गया हूँ
जिनके पास सोचने को बहुत है
करने को कुछ नहीं
और तब से मैंने
न जाने कितनी बातों के टुकड़े सोच डाले हैं
और हर सोची हुई बात
सोख्ते में दबी हुई
सूखी और नाज़ुक पत्ती की तरह हो गयी है
जिसकी दिन ब दिन साफ़ दीखती हुई रगों पर
इतिहास के बाहर से
सुनहरी रोशनी का सफ़ूफ़ गिरता है।

...बारिश...बारिश...बारिश
मैं फिर उसी कगार पर वापस आता हूँ
और खिड़की के पार
मटमैले आसमान की ओर देखता हूँ
जिसमें बादल इतने सपाट हैं
कि उनके होने का पता ही नहीं चलता
सिर्फ़ सन्दिग्ध सी बूँदें बरस रही हैं
और पड़ोस की छत से
धार गिरने की आवाज़ आती है।
और यह सारा शहर
अनिवार्य बारिश में इस तरह भीग रहा है
जिस तरह जानवर भीगते हैं।

एक आत्मीय बातचीत की याद

इसी तरह मैं तुमसे
हल्के हल्के बातें करते हुए
उस नीरोध समुद्र में
डूबता चला गया
और मुझे लगा कि हमारी
निष्कपट आवाज़ में
एक मोती जन्म ले रहा है।
कमरे में
सिर्फ़ आवाज़ों का एक गुनगुना फलाव था
पानी की तरह निरन्तर
और मेरे तुम्हारे अलावा कोई नहीं था :
और मैं तुम भी नहीं
सिर्फ़ दो छिलते हुए कसेरू
जिनके भीतर से
निष्कलंक, और निष्कलंक, और निष्कलंक
ताज़ा सफ़ेदी निकलती चली आ रही थी. . :

जानते हो घर लौटने के बाद मैंने क्या सोचा ?
कि सचमुच जब मैं बातें कर रहा था

तब तुम भी नहीं थे—
सिर्फ़ वे शब्द थे
जो मुझे तराशते चले जा रहे थे
और तब मैं तुम्हें नहीं, ख़ुद को भी नहीं
उस तीसरे को देख रहा था
जो अक्सर मेरी मृत्यु के भीतर से
अनायास उद्भूत होने लगता है ।
और जब तक मैं बोलता रहा
कलाकृति की तरह
वह निर्मित होता रहा
फिर जब मैं चुप हो गया
बाज़ीगर की गेंदों की तरह
वह लुंज पुंज
न जाने किस खोखल में समा गया ।

इन निष्कलंक क्षणों में
हम क्यों इतने अकेले पड़ जाते हैं ?
अपने ऊपर से
इस समूची सृष्टि को उतार फेंकने का काम
क्यों इतनी तन्मयता की माँग करता है ?
क्यों हमारी सारी संवेदनाओं को
बेहोश कर देने के बाद ही
उस अछूते इन्द्रजाल का जन्म होता है ?

शायद अब तुम अन्दाज़ लगा सकोगे
कि क्यों मैं उस दिन

यकायक सिटपिटा गया था
जैसे ख़ुद से बातें करते हुए
पकड़ा गया हूँ :
सचमुच शर्म की बात है
इस तरह ख़ुद से बातें करते हुए
पकड़ा जाना
और जब तुमने प्याले उठा कर टकराये
स्वास्थ्य की कामनाएँ कीं
और ज़िन्दगी को घूँट बना कर पी गये
तब मैं कल्पित आकाश में सिलवटें टटोलता रहा
जिनमें मैं छिप जाऊँ ।

क्यों उस अभूतपूर्व की याद
भरी सभाओं में
इस तरह अपाहिज बना देती है
अपाहिज, क़सूरवार ?

उस क्षण
जब शब्द पुल नहीं बनाते
जब तुम भी अन्तहीन आकाश में
तिरोहित हो जाते हो
जब उस दूसरे छोर पर कोई नहीं होता
उस क्षण
मेरे ये सारे शब्द
मेरी विलीन होती हुई खाल के बुलबुलों की तरह
मेरे चारो ओर चमकते हैं

और वह आत्मीय जो प्रकट होता है
निरन्तर छीजता जाता है
और उसी प्रक्रिया में
अँखुए की तरह चमकता है।

ऐसे ही मैंने सृजन को देखा है
और उसे मृत्यु की तरह पहचाना है
वह हत्या से उपजता है
और आत्महत्या की ओर बढ़ता है—
मैं उसे ग़लत नामों से नहीं पुकारूँगा
मैं सिर्फ़ पूछता हूँ
क्यों, आख़िर क्यों ?

कोई जवाब नहीं मिलता।

सिर्फ़ आलोक ही नहीं

सिर्फ़ आलोक ही नहीं
वह भी जिसमें आलोक समा जाता है
सिर्फ़ विभोरता ही नहीं
वह भी जो विभोरता के बाहर साँय-साँय करता है

घाटी का आख़िरी आदमी

वे सब उस विशाल तीर्थयात्रा को चले गये
पताकाएँ उड़ाते, तूर्य बजाते
                    आभूषण झंकारते :
धनुषाकार नदी के किनारे
एक सुनहरा हिरन
चुपचाप पानी पीता है
                    टटोल टटोल कर
और एक पनडुब्बी
गेंद की तरह उछलती है
                    अधर में ।
संज्ञाहीन घाटी के शरीर से
नाभिवासी स र्प की तरह
निरापद को तौलता
निकलता है अर्थ—
नवजात शिशु की त्वचा-सी
चमकदार केंचुल पर
ब्रह्माण्ड की गुदगुदी उँगलियों का
दबाव महसूस करने के लिए
और पीता है छनी हुई हवा को ।

क्या वे वापस लौटेंगे ? शायद नहीं ।
तूर्य की आवाज़ आती है, दूर से
और मिटते-मिटते
तनी हुई हवा की ही तरह
पारदर्शी हो जाती है ।

वे जो उत्साह, ओज
तैयारी की घबराहट
कोतल पशुओं का रोका जाता आवेग
रंग बिरंगे परिधानों की निर्णयात्मकता
परस्पर सहारे की बेचैनी
मुखियाओं का आत्मविश्वास
पंक्ति-पंक्ति में अनुस्यूत
ममता, कुतूहल, उत्स, कुरच
भरे-पुरे आरम्भ का उल्लास
कल्पित प्रयासों का उठता-गिरता संगीत
लिये, अगले पड़ाव तक चले गये
क्या वे वापस लौटेंगे ?
--शायद नहीं ।

अर्थ के टटोलते सरीसृप-सा
स्वप्न-रहित
मैं वल्मीक तोड़कर निकलता हूँ
मैंने विहा दिये हैं सारे स्वप्न, सारे पाश
और मैं उन्मुक्त हूँ

फिर भी बरसात की निरभ्र दोपहरी में बिल्लौरी भाप-सा
मैं मँडराता हूँ घाटी पर,
मुझको बेधकर थरथराती है पनडुब्बी
और सुनहरा हिरन
मेरे स्पर्श से रोमांचित होता है ।

अन्तरिक्ष की तरह अनस्तित्व समाधि के बाद भी
कुछ नहीं भूला हूँ मैं
सिर्फ़ सब कुछ धुल गया है
और हीरे के टुकड़ों-सा चमकता है
आहिस्ता तरंगायित

क्या मैं जाऊँ उस पार ?
जहाँ ओस भरी घास रसीले होंठों की तरह आभा देती है ?
अकेला पीला फूल
अनिश्चित चिड़िया की तरह
पंख खोल खोल कर रह जाता है
उ ता नहीं ?
सफ़ेद पत्थरों का उतरता हुआ ज़ीना
थोड़ा-सा दिखता है

सूना
जाने के लिए नहीं, बैठने के लिए ?

कौन था जो सीढ़ियों तक आया
और आकार लेकर अदृश्य हो गया ?
मैंने उसका चेहरा नहीं देखा
क्या उसके चेहरा था ?
क्या वह था
जो घाटी में छूट जाता है
सब के चले जाने के बाद ?

क्या है जिसने धो दिया है अस्तित्व को
स्मृति के फैलाव में इतस्ततः
स्तब्ध मीनारों को
संगमर्मर की तरह जमी हुई बालू को
और घिरे हुए निर्वात को
जो अस्तित्व है ?
समय, तो फिर समय ही क्या है ?
स्वप्न-रहित समय
जो धोकर संचित कर देता है
चेतना को
निर्निमेष अशरीरी दृष्टि में बदल देता है ?

कब तक तुम इस चुपचाप बहते हुए
निर्मल पानी को देखते रहोगे
स्वप्न-रहित ?
जंगलों के ऊपर से बादल चले गये
और आकाश फिर आदिम हो गया,
कुछ देर के लिए
दूर नदी के सिरहाने
बरफ़ीला शिखर दिखा था
और लुप्त हो गया
कुंज से टूट कर एक पीली पत्ती
निर्मल पानी की आरसी में गिरी
नाची, और बहकर चली गयी।
तुमने उसे नहीं देखा
सिर्फ़ पानी देखते रहे,
अदृश्य स्रोत से आता हुआ
अदृश्य रन्ध्र में समाता हुआ
रव-हीन, स्वप्न-हीन पानी।

कहाँ है अन्त ?
तिलमिलाता, दुर्भेद्य, अन्तिम अन्त ?

मैंने अपनी दोनों हथेलियाँ फैला दी हैं
दर्पण की तरह
ताकि यह विराट् नील उनमें प्रतिबिम्बित हो सके।

अब भी पहले की ही तरह
इन हथेलियों के तले
नीला समूचा आकाश दिखता है आर पार
और इस अनन्त नीलिमा को
भाग्य रेखा की तरह
चीरती हुई
सफ़ेद बलाका उड़ती चली जा रही है
क्षितिजहीन. . .

मेरी निवेदित दृष्टि
इस कभी न ओझल होने वाली बलाका के साथ
अनुपस्थित गन्तव्य की नीलिमा में खो जाती है।

अब भी पहले की ही तरह
मुकुर की सतह को सहलाता हुआ
हवा का परिचित झोंका
निकल जाता है
और प्रतिबिम्ब के स्थान पर
धुँधली भाप के बीच से
उदित होती हैं
दो भीगी गदोलियाँ
और महीन धागों की तरह स्पन्दित शिराएँ।

अब भी पहले की ही तरह
इस शैल पर खड़ा हुआ

मैं विसर्जित करता हूँ
अनुभूति के निश्शेष
हवाओं को, गुमसुम शिखरों को, धनुषाकार नदी को
निश्शब्द. . .

मैंने तुम्हें एक झलक दिखलायी है
जो मैं अपने साथ लाया था
और सन्ध्या के पहले
जब इस शिखर से उस शिखर तक
साँवला सूर्यहीन प्रकाश फैल जायेगा
तब मैं फिर वापस चला जाऊँगा
पीली रोशनी की खिड़की वाले कुटीर में
सफ़ेद काग़ज़ पर बनते-बिगड़ते आकारों को देखने ।

मैंने अँधेरे के बीच से देखने की कोशिश की
और कुछ नहीं पाया
अदृश्य प्रवाह के अतिरिक्त
और मैंने देर तक देखी हैं
गुज़रती सन्ध्याएँ
आधी रात में छिटके तारे
पत्थर पर चुपचाप बैठी चिड़िया
काले पड़ते जंगल
और सीढ़ियों की तरह दूर तक उतरते हुए विस्तार. . .
लेकिन इन सबके अतिरिक्त
काँच के सरोवर की तरह
एक व्यूह-बद्ध मौन है
दर्पण के इस पार
जिसे कुछ नहीं तोड़ता
क्योंकि उस तक कुछ नहीं पहुँचता
सतह को छूकर
सब कुछ धुल जाता है
और सुनहरी किरनों के जाल में बसी हुई
नीली, स्वतःसम्पूर्ण सृष्टि घनी हो जाती है।

तलाश, तलाश, अनवरत अन्तहीन तलाश
जो पेड़ों की डालों में
सूने मकानों में
खण्ड-खण्ड चट्टानों में
भूरी चिड़िया की तरह उड़ती फिरती है ।
पेड़ों के तने पीली आभा से ग्रस्त हो जाते हैं
चट्टानें ग़ुब्बारों की तरह चमकने लगती हैं
नदी का सारा पानी दरार में समाने लगता है
और मंजूषा की तरह
मेरे साथ यह घाटी वन्द हो जाती है ।
मैं जानता हूँ
चिड़िया पेड़ों के चारो ओर
उड़ान की डोरियों के
बेतहाशा जाल बुन रही है ।
मैं बैठा हुआ
ज़मीन की ओर देखता हूँ
घास की पत्तियों को
जो अभी भी स्थिर हैं
और प्रतीक्षा करता हूँ . . .

किसने मुझे इस स्वनिर्मित केन्द्र में छोड़ दिया
जिसके चारो ओर खोखले समुद्र की तरह
सिर्फ़ आलोकहीन विस्तार हैं
और दूर किनारों पर
भागते हुए मद्धिम नक्षत्र-लोक ?

मैंने यह चुना नहीं, लेकिन मैं ही था अन्तिम
क्योंकि मेरे बाद शृंखला ख़त्म हो गयी
जिस पगडण्डी से मैं आया था
अब वहाँ घटाटोप वन हैं :
शायद वह सीमा-रेखा भी नहीं रह गयी
जिसके बाद वापस जाना असम्भव है।

अतीत दूर होता जाता है, और साथ साथ भविष्य भी
और मैं इस बीच के शैल पर खड़ा हुआ
केवल इस शून्य को भरने के लिए
विसर्जित होता जाता हूँ
मेरे हाथ निस्सीम में फैलकर ओझल हो गये हैं
और मेरी दृष्टि स्थिर हो गयी है
अथाह. . .अथाह. . .
सीमा शून्य की नहीं
दृष्टि की परिधि है

बाँझ कामधेनुएँ

बाँझ कामधेनुएँ
रँभाती हुई आईं
और मेरे चारों ओर आकर ठहर गयीं
इस उम्मीद में कि मैं उनसे कुछ माँगूँगा :
मुझे सिर्फ़ घिर जाने की तकलीफ़ हुई
और मैं उनकी आँखों से आँखें मिलाये
घूरता रहा ।

हर आँख से झाँकती हैं
वरदान के अचूक गृद्धों की तरह
कल्पवृक्ष की चबाई हुई पत्तियाँ
जिनसे एक बालिश्त नीचे
जबड़े जुगाली करते हैं ।
तनाव की स्थिति में
रँभाना बन्द है ।

कवि मीडास

कहते हैं गिरता है मानस में लगातार
सरपत के फूलों सा नरम नरम निर्झर
अन्तर में तैरता समुन्दर है आबदार
जिसमें है खाड़ी, जलडमरुमध्य, सागर

अक़्ल में हिमांचल की बरफ़दार चोटी है
जिस पर लहराती है सिल्क की पताका
आत्मा में सात संगमर्मर के आँगन हैं
जिनमें है धुले हुए मलमल सी राका

मर्म कोठरी के पार बन्द है तिलिस्म एक
बीच में सरोवर है चारों ओर सीढ़ियाँ
आधी रात खिलता है अंजलि-सा कुईं फूल
बाहर टकराती हैं जाँनिसार पीढ़ियाँ

एक मुँह-माँगा चाँद व्याप्त है दिशाओं में
फेंकता है रश्मि चन्द्रकान्त को टटोलता
बार बार देखता जलाशय को सीझ सीझ
सिर्फ़ एक इन्द्रजालवासी यहाँ डोलता

गदराई नदियाँ हैं, काँपते बवण्डर हैं
मेहताबी कुहरा है, पिसा हुआ सोना है
आँखें मूँदने पर काम करता है इन्द्रजाल
शब्दों में जादू है, हाथों में टोना है

जिसको छू देते हैं सोना बन जाता है
सब कुछ अनहोना यहाँ होना बन जाता है ।

चेहरे से लगता नहीं ।
बाहर सुलगता नहीं ।

फिर भी तुम गा गा कर खँजड़ी बजाते रहो
ओ सच्चे साँइयाँ !
झूठ सच वाली इस मिली जुली दुनिया में
कौन नहीं
अपनों में सन्त और ग़ैरों में काइयाँ ?

कविवर मीडास, तुम सब छू कर स्वर्ण करो
सोने का पानी और सोने की प्याली है
प्यासे मर जाने की शिकायत है ओछापन
कंचन का दोष क्या, कसौटी ही काली है !

बन जाता दीप्तिवान

सूरज सवेरे से
जैसे उगा ही नहीं
बीत गया सारा दिन
बैठे हुए यहीं कहीं

टिपिर टिपिर टिप टिप
आसमान चूता रहा
बादल सिसकते रहे
जितना भी बूता रहा

सील रहे कमरे में
भीगे हुए कपड़े
चपके दीवारों पर
झींगुर औ' चपड़े

ये ही हैं साथी और
ये ही सहभोक्ता
मेरे हर चिन्तन के
चिन्तित उपयोक्ता

दोपहर जाने तक
बादल सब छँट गये
कहने को इतने थे
कोने में अँट गये

सूरज यों निकला ज्यों
उतर आया ताक़ से
धूप वह करारी, बोली
खोपड़ी चटाक़ से

ऐसी तच गयी जैसे
बादल तो थे ही नहीं
और अगर थे भी तो
धूप को है शर्म कहीं ?

भीगे या सीले हुए
और लोग होते हैं
सूरज की राशि वाले
बादल को रोते हैं ?

ओ मेरे निर्माता
देते तुम मुझको भी
हर उलझी गुत्थी का
ऐसा ही समाधान
या ऐसा दीदा ही
अपना सब किया कहा
औरों पर थोपथाप
बन जाता दीप्तिवान ।

दीवारें

जिस दिन हमने तोड़ी थीं पहली दीवारें
(तुम्हें याद है ?)
छाती में उत्साह
कण्ठ में जयध्वनियाँ थीं।
उछल उछल कर गले मिले थे
फिरे बाँटते बड़ी रात तक हम बधाइयाँ
कारा भर में फैल गयी थी यही सनसनी —
लो, कौतूहल शान्त हो गया।

फिर ये आये
ये जो दीवारों के बाहर के वासी थे
उसी तरह इनके भी पैरों में
निशान थे
उसी तरह इनके भी हाथों में
रेखायें
उसी तरह इनकी भी आँखों में
तलाश थी
परिचय स्वागत की जब विधियाँ ख़त्म हो गयीं
तब ये बोले —

यहाँ कहीं कुछ नया नहीं है ।

और हमें तब ज्ञात हुआ था
(तुम्हें याद है ?)
इसके आगे अभी और भी हैं दीवारें ।

तब से हमने तोड़ी हैं कितनी दीवारें
कितनी बार लगाये हमने जय के नारे
पुष्ट साहसी हाथों की अन्तिम चोटों से
जब जब अररा कर टूटीं ज़िद्दी प्राचीरें
नभ में उड़ कर धूल गयी है
(किलकारी भी !)
लेकिन हर हर बार क्षितिज पर
क्रुद्ध वृषभ के आगे लाल पताका जैसी
धीरे धीरे फिर दीवारें उग आयी हैं
नथुने फुला फुला कर हमने घन मारे हैं ।

अजब तरह की है यह कारा
जिसमें केवल दीवारें ही
दीवारें हैं
अजब तरह के कारावासी
जिनकी क़िस्मत सिर्फ़ तोड़ना,
सिर्फ़ तोड़ना ।

लाक्षागृह

हर बार आज तक यही हुआ
युग युग तक ऐसे ही होगा ।

जब जब असत्य ने छल से, बल से, माया से,
सब कुछ करने को भस्म लाख के भवन रचे
कोई ज्ञानी, धर्मालु, सत्य का अन्वेषी
निष्कपट विदुर आड़े आया —
दे गया दबे शब्दों में सारा कपट-भेद
फिर प्रभु-अनुकम्पा के बल से
जो सच था शिव था सुन्दर था
बे-आँच सुरंगों वाले पथ से बच आया ।
निस्संशय ही
होती आयी है, आगे भी
हर बार सत्य की जय होगी ।

वे मदोन्मत्त
कुछ जली अस्थियों के भ्रम में
उत्सव करते हैं क्षणभंगुर — वे हैं असत्य ।
हम अभय-सिद्ध

जो अब भी अडिग सुरक्षित हैं
इस वन में बैठे हँसते हैं—हम धवल सत्य।

लेकिन राजन्
कल लाक्षागृह के भीतर जो शव पड़े मिले
वे किसके थे ?

नतीजे, ख़रीते, लुब्बेलुबाब

लैस सिपाहियों की तरह
आस्थाएँ, मान्यताएँ, व्याख्याएँ, नतीजे, ख़रीते, लुब्बेलुबाब
मैदान में उतरते हैं
सीटियों की ललकार पर
क़वायद करते हैं
जिन्हें हफ़्तों से कोई मनोरंजन नहीं मिला है
वे सब चहारदीवारियों पर
उचके उचके नज़ारा देखते हैं।

न ये जादूगर हैं, न वैद्य, न डाक्टर, न चोर, न गिरहकट
फिर भी दिन दहाड़े
चीख़ चीख़ कर आवाज़ें करते हैं
तनतन कर चलते हैं, उछलते हैं, चक्कर काटते हैं
धावे बोलते हैं
आज़माइशी मुक़ाबले करते हैं
हाथ मिलाते हैं
करतब दिखाते हैं
और झण्डा उतरने के बिगुल का
इन्तज़ार करते हैं

सलामी ठोंकते हैं
बन्दूक़ें बग़ल में दबाते हैं
वापस जाते हैं
वर्दियाँ उतारते हैं
कोठरियों में बन्द
एक एक सो जाते हैं।

रात रात टँगी हुई वर्दियों की सिलवटों से
निकलते हैं
भावनाओं के समूह लहूलुहान
आँखें नचाते
कूल्हे मटकाते
हवा में अपनी खोपड़ियाँ उछालते
टन् टन् तालियाँ बजाते
नाचते कूदते
अँगूठे दिखा कर छू-मन्तर करते
और यकायक निढाल होकर
दरवाज़े के शिगाफ़ में समा जाते...

यों ही
सफ़ पर सफ़
आते हैं
घोंट कर दबाये हुए
पिशाच प्रश्नों के जलूस
रात भर
और वे गहरी नींद में जागे हुए
अकेले उतान

देखते हैं टकाटक
बोल नहीं पाते
छाती पर हाथ रखे
निपट अनाड़ियों की तरह
घी...घी...घी...करते हैं।

और वे सुबह होने की कामना भी नहीं कर पाते
क्योंकि उनकी कामनाएँ भी
मुँह बिचकाने वाले अजनबियों में शामिल
शिगाफ़ों के रास्ते
बाहर चली गयी हैं।

रात भर।
रात भर।

सवेरे सवेरे
फिर निकलते हैं
दरबों के भीतर से
आँके बाँके चाक चौबन्द
हट्टे कट्टे पट्ठे
सलामी ठोंकते फेफड़े फुलाते
नतीजे, ख़रीते, लुब्बेलुबाब!

न जाने किस जादू के प्रभाव से
कोठरियों के बाहर सुबह होती है
न जाने किस जादू के प्रभाव से
शिगाफ़ों के रास्ते रोशनी आती है।

बारम्बार

यह सब यदि
झूठा है, नक़ली है, बासी है, बंजर है, खोखला है
बेमानी शब्दों का चकमा है, छलावा है
साँकल की गूँजती प्रतिध्वनि है :
तो क्यों आख़िर
मस्तक में सख़्त लहू लोहे के फुटेरों सा
बदहवास फूल फूल फूटता है ?
क्यों यह
कनपटियों, यह अबरू, पेशानी के नीचे का गोश्त सब
थक्के पर थक्के सा ऐंठता निचुड़ता है ?
भीतर का मरज़
बे-अख़्तियार पंजों-सा फैलता सिकुड़ता है ?

क्या है जो
होश के इस चीमड़ ग़िलाफ़ को
पंजों से फाड़, परख़चे उड़ा
छूट जाना चाहता है ?
ताकि इस हवा में
तैरता रहे—

सियाह !

इस इन्तहा से उस इन्तहा तक !

नहीं, सौन्दर्य नहीं, अर्थ नहीं, तड़प नहीं
प्यास नहीं, घृणा नहीं, प्रेम नहीं
दृष्टि नहीं, दुःख नहीं --
मतलब दे जाय कुछ बिजली-सा, बल्बों-सा
बोझल फ़ानूसों-सा, रोशन चँदोवे-सा
ख़ूँख़्वार जानवर की आँखों-सा
बाँबी की मणि-सा
या ऐसा जो जीवन भर साथ दे —
आँखों के सामने
तमाशे-सा जला करे, बुझा करे : नहीं, नहीं, नहीं,

तब क्यों फिर यह
सख़्त मँडराती हुइ बेसब्री—
वक़्त बीत जाने की
जगने के पहले ही, हाथ पैर बँधे बँधे
कुहरे से ढकी हुई नदी में
हाय डूब जाने की —
अथाह !
बार-बार, बार-बार, बार-बार !

इसी तरह उम्र भर

पृष्ठभूमि के नाम पर यों समझिए
कि बाक़ी दुनिया अँधेरे में है
बीच में एक मेज़ है
जिसके गिर्द लोग बैठे हैं
कुछ खड़े भी हैं।
सबकी आँखें मेज़ पर लगी हैं।
इन्तज़ार।

एक प्याले से
काला गेहुँअन सर निकालता है
निडर होकर इधर उधर देखता है
साधकों की भीड़ में से कोई
मंत्र फूँक कर तिल मारता है
अचूक।
गेहुँअन लड़खड़ाता है
मूर्छित होता है
प्याले में वापस चला जाता है
साधक अट्टहास करते हैं
एक दौर हुआ।

फिर किसी दूसरे प्याले से
सहमता हुआ गेहुअन निकलता है
निडर होता है, झूमता है
डसने के लिए लहर लेता है
कोई और साधक
फिर फूँक कर तिल मारता है
गेहुअन लड़खड़ाता है
लोग चुसकियाँ लेते हैं
एक और दौर हुआ ।

इसी तरह दौर पर दौर
दौर पर दौर
शाम भर ।
इसी तरह शाम पर शाम
शाम पर शाम
उम्र भर ।

इस नगरी में रात हुई

मन में पैठा चोर अँधेरी तारों की बारात हुई
बिना घुटन के बोल न निकले यह भी कोई बात हुई
धीरे धीरे तल्ख़ अंधेरा फैल गया, ख़ामोशी है
आओ ख़ुसरो लौट चलें घर इस नगरी में रात हुई ।

दे दे इस साहसी अकेले को

दे दे रे
दे दे इस साहसी अकले को
एक बूँद ।

ओ संध्या
ओ फ़क़ीर चिड़िया
ओ रुकी हुई हवा
ओ क्रमशः तर होती हुई जाड़े की नर्मी
ओ आस पास झाड़ों झंखाड़ों पर बैठ रही आत्मीयता

कैसे ? इस धूसर परीक्षण में पंख खोल
कैसे जिया जाता है ?
कैसे सब हार त्याग
बार बार जीवन से स्वत्व लिया जाता है ?
कैसे, किस अमृत से
सूखते कपाटों को चीर चीर
मन को निर्वन्ध किया जाता है ?
दे दे इस साहसी अकेले को ।

तीर्थ तो है वही...

.....आज मैंने जीर्ण वसनों की तरह
तुम्हारे उन सुलभ मन्त्रोच्चारकों का कर दिया ह त्याग
घोष करती नदी तट पर खड़ा हूँ चुपचाप
चमकती है रेत
धुले रंगारंग पत्थर बिछे हैं अनमोल
और मन में किरकिराती है निरुत्तर शान्ति !

नहीं छूता मुझे भैरवनाद
नहीं मन को बाँधता बेताव लहरों का उछलना
बह गये वे वसन धारा में न जाने कहाँ
लग रहा है आज फिर से लिया मैं ने जन्म।

हुआ जो कुछ हुआ,
अब तो सत्य चाहे मिले
ढालों पर विकम्पित
घने वन की फुनगियों से झांकता-सा
चोटियों के मौन में
कुण्ड में चुपचाप बहते हुए जल की आरसी में
बादलों से भरे नभ को देखते खामोश पक्षी में

गुज़रते हुए राही में
अकेले फूल में
पर ओ नदी ! अब तुम नहीं हो तीर्थ
तीर्थ तो है बर्फ़ का उजला सरोवर वही
जिसको छोड़कर हम तुम
चले थे साथ

तुम्हें देकर विदा
फिर मैं लौट जाऊँगा वहीं....

हिमालय की याद में एक पत्र

(जगदीश गुप्त को)

सुनो
मैं जानता था एक दिन देखे हुए वे
वन नदी पर्वत
बड़ी तर्रार सैलानी हवा में झूमते जंगल
दुपट्टे की तरह उड़ते हुए निर्झर
अनेकों घाटियों के पार से आता हुआ वह स्वर पपीहे का
अभी जो उड़ गया है बेतहाशा बरस कर ओलों भरा बादल
कटोरे की तरह चारो तरफ़ से घेरती वे चोटियाँ तिरछी
ज़रा से रास्ते के लिए सब कुछ तोड़ने वाली नदी की
तेज़ लापरवाह धाराएँ
ढलानों पर तराशी खेतियाँ ऊँची दुकानों-सी
अचानक झोपड़े, फिर गाँव, फिर कुछ लोग परिचित से
अकेली राह को सहसा जिला कर छोड़ देता जंगली पाटल
ठहरने के लिए मजबूर करता पत्थरों से फूटता पानी
बरफ़ उजली, बरफ़ नीली
बरफ़ मिट्टी मिली बेताब हाथों में पिघलने को
बरफ़ बेदाग़ ढालों पर लहरियादार पानी-सी
बरफ़ वह आख़िरी...आज़ाद...

ऊँची चोटियों पर दूर मंज़िल-सी
कि जिसको देख कर हम देर तक ख़ामोश बैठे थे.....
सभी कुछ याद आयेगा :

कहेगा :
हम अभी भी हैं
जहाँ से तुम छलक कर
बीत कर
ख़ामोश होकर
लौट आये थे
उसी फैले हुए बेलौसपन में हम अभी भी हैं
जिसे तुम कह नहीं सकते
महज़ महसूस करते हो
उन्हीं उलझी हुई अनुभूतियों में हम अभी भी हैं :

अगर यों सिर्फ़ आँखें फेरने से काम चल जाता
तो फिर ऐ दोस्त जी लेना बहुत आसान हो जाता
मगर हम और हम जैसे
कि जिनसे ज़िन्दगी की बात का मतलब निकलता है
महज़ आसान रस्तों में भुलाये जा नहीं सकते
तुम्हें फिर याद आयेंगे ।

बहुत बेचैन हैं फिर पैर उस सहरानवर्दी को
तुम्हारे साथ में बीती फ़िज़ाएँ याद आती हैं
कहीं बैठा हुआ मैं फिर तुम्हारी राह तकता हूँ
सुनो फिर बर्फ़ में भीगी हवाएँ याद आती हैं ।

अर्धभस्म देवदारु

बिजली की तरह वह आया
और तुम्हें पुराने देवदारु की तरह
बीच से चीरता हुआ
भूमि में समा गया ।
तुम उस विशाल आलोक को देखते रहे
जो सहसा चारों ओर छा गया था
तुम्हें ध्यान ही नहीं रहा
कि तुम दो टुकड़े हो गए हो ।
और अब तुम्हारे पास
वे शब्द भी नहीं हैं
जिनसे तुम
उस कथा की आवृत्ति कर सको
जो तुम्हारा जला हुआ कलेवर माँगता है ।

क्या तुम्हारा यह दावा है
कि तुमने झेल लिया
ताकि शेष हरे रह सकें,
कि जो समर्थ हैं

वे हवा में अनगिनत हाथ फैलाते रहें
और जो शिशु हैं
वे कल्ले फोड़ते रहें ?
लेकिन तुम इसे किन शब्दों में कहोगे
तुम जो अवाक्, आत्म-विस्मृत, चकाचौंध
रह गये थे ?

क्या तुम इस अर्धभस्म कलेवर से
वह गाथा गाओगे
कि किस तरह एक दिन प्रकाश आता है
और सारे जंगल को
नंगा करके चला जाता है
कैसे छिपने के लिए
कोई गुल्म कोई कुंज कोई कोटर नहीं बचता
कोई चारा नहीं रहता
और हमारे स्तूप-से शरीर पर
घनसार आलोक बारिश होती रहती है ?

गा सको तो गाओ
लेकिन क्या तुम्हारे पास
अब भी वह बचा हुआ है
जो आक्षितिज छा जाने वाली
तुम्हारी आवाज़ का निर्माण कर सके ?

यह जो तुम्हारी चिटखी हुई अस्थियों में
बाँसुरी की तरह बजता है
कुछ नहीं, केवल हवा है
जो न जाने किन किन हिमशीतल प्रदेशों का
सन्देश लिये
तुम्हारे पास से गुज़र रही है।
उस घटना के बाद
तुम बिल्कुल निष्कवच हो गये हो
सृष्टि का हर एक कम्पन
तुम्हें इसी तरह बजा कर चला जाया करेगा
और उस आयाचित संगीत को
तुम कभी भी
पहचान नहीं सकोगे।

गा सको तो गाओ !
क्या तुमने हज़ारों बार
उस गाथा का आरम्भ नहीं किया
जो तुम्हारे हाथ से छूट कर
विश्वव्यापी प्रतिध्वनियों में बदल जाती रही ?
और तुम आज तक नहीं जान सके
कि उसका मध्य कैसा है
और अन्त कहाँ है ?
क्या हर बार कह चुकने के बाद
तुम्हें आश्चर्य नहीं हुआ
कि यह वह बिल्कुल नहीं है
जिसकी शुरुआत तुमने करनी चाही थी ?
गा सको तो गाओ !

मैंने निर्जन तिलिस्म के उद्यान में
निरन्तर चलते हुए फ़ौवारे को देखा है
जो बराबर अपने को
अपने कृत्रिम आकाश की ओर फेंकता रहता है
और उसकी छलछलाती हुई बूँदें
लौट लौट कर उसे ही नहलाती रहती हैं
नीले आसमान को
जो उसके थाले में अंजन की तरह
प्रतिबिम्बित होता रहता है
वह कभी भी छू नहीं पाता
और मुझे कभी कभी लगा है
कि तुम शिखर पर उसी फ़ौवारे की तरह
निश्चल खड़े हो
और तुम्हारे चारो ओर पारदर्शी तिलिस्म है।

मैं ने वे क्षण भी देखे हैं
जब यह सारा का सारा वन-प्रदेश
अदृश्य हो जाता है
और उस अटूट सन्नाटे में
चमकती हुई मधुमक्खियों की तरह
तुम्हारे भीतर से हज़ारों पत्तियाँ निकलती हैं
मैं तुम्हारी शाखों को एक एक कर फैलते देखता हूँ
और तुम एक विभोर वैभव की तरह

उमड़ने लगते हो ।
उस महारास को मेरे सिवा कोई नहीं जानता ।

मैंने यह सब
खिड़की के निर्मल काँच के उस पार
घटित होते देखा है
और यह भी
कि इस महोत्सव को समेट लेने के बाद
कई दिनों तक तुम्हारा कलेवर
रह रह कर थरथराता रहता है
और लताएँ, पेड़, शिलाएँ, पर्वत श्रेणियाँ
आश्चर्य और भय के साथ
तुम्हारी ओर देखती हैं ।

वसुधारा

कौन जादूगर
मेरी काया में प्रवेश कर गया है
जो मुझे द्युलोक से परे
अनन्त चमकीले ब्रह्माण्डों का
दर्शन करा रहा है ?
हज़ारों आदित्यों का निर्झर
इन लोकोत्तर छवियों पर बरस रहा है
और उनकी रोशनी में
प्रसन्न बच्चों की तरह
सारे नक्षत्र किलकारी मारते
दौड़ रहे हैं।

यह कौन महादानी है
जो दोनों हाथों से सागर उलीच रहा है
और किनारे खड़ी
असंख्य प्यासी भीड़ को
नहलाता चला जा रहा है
ये कौन लोग हैं
जिनके बलवान पुट्ठे

धुले हुए सेबों की तरह चमक रहे हैं ?
उनके चेहरों पर
असीम तृप्ति का उल्लास है
और सुख के कारण
उनकी आवाज़
गले में अटक अटक कर
रह जाती है ।

बेतहाशा कुहराम के बीच
यह कैसी सुरीली रागिनी
सौन्दर्य के बेक़रार टुकड़ों की तरह
रह रह कर सुनाई पड़ती है ?
जैसे देवताओं से छूटी हुई कलाएँ
आन्दोलित समु   में
शरीर धारण करने के लिए
दौड़ रही हैं
और मरमरीं वीनस का जन्म हो रहा है ।

जादूगर,
मेरा रच रच कर बाँधा हुआ कवच
न जाने कब का
तार तार होकर
महीन काग़ज की पर्चियों की तरह
चारो ओर उड़ गया है
और अब इन बेपनाह थपेड़ों की मार से
मेरी अरक्षित पसलियाँ
हिंडोले की तरह

काँप रही हैं।

जादूगर,
मैं सरे बाजार नंगा हो गया हूँ
मेरे पास छिपाने को
कुछ भी शेष नहीं रह गया है
असंख्य बूँदें मेरे ऊपर बरस रही हैं
और मेरी अधडूबी चेतना में
अभ्रक की तरह तुम्हारी झिलमिलाती आवाज़
आ रही है :
लो, देखो, सामना करो।

अभी मैं इस महादर्शन से
तृप्त नहीं हुआ हूँ
मैं उड़कर उन अपरिमित आवेगों को
अपनी उँगलियों पर गुज़रते हुए
छूना चाहता हूँ
मैं इस दहाड़ते निर्झर के प्रवाह में
अपना हाथ डालना चाहता हूँ
ओ जादूगर,
तुम मुझे वहाँ ले चलो
जहाँ मेरे हाथ
उस धारा के पास तक पहुँच सकें।

अभी मैंने उन अन्तरिक्षों की
यात्रा नहीं की है
जिधर से ये सारे द्युलोक के नागरिक
अलौकिक तीर्थों के लिए जाते हैं

यह सारा का सारा पथ
उनकी चटकीली ध्वजाओं से
हिल्लोलित हो रहा है
और उनके कंठ की आवाज़ें
धूप में तितलियों की तरह
प्रसन्न आकाश में फैल गयी हैं —
कब से यह महोत्सव मनाया जा रहा है
जहाँ मुझे आज लाकर खड़ा कर दिया गया है ?

अब मुझे अपने उस छूटे हुए कलेवर की
याद भी नहीं आ रही है
जो यहाँ से
निर्जीव सर्प की तरह
किसी कोने में पड़ा दिखता है
जादूगर,
तुम कब तक मुझे
इस ऐश्वर्य के किनारे खड़ा रख सकते हो ?
तुम चाहो तो उस केंचुल को
समुद्र के हवाले कर देना
और मुझे
इन गूँजती हुई चट्टियों में
खो जाने के लिए छोड़ देना ।

बीच का बसन्त

बीते हुए कुंचित कुतूहल औ'
आने वाले तप्त आलिंगन के
बीच हम तुम जैसे
प्यास सहलाती मीठी ममता में बहते हैं
वैसे ही
कुहराये शीत और उष्णवायु आतप के
बीचोबीच कसा यह
मौसम गुलाबी है।

शुभ हो बसन्त तुम्हें
शुभ्र, परितृप्त, मन्द मन्द हिलकोरता।

ऊपर से बहती है सूखी मँडराती हवा
भीतर से न्योतता विलास गदराता है
ऊपर से झरते हैं कोटि कोटि सूखे पात
भीतर से नीर कोंपलों को उकसाता है
ऊपर से फटे से हैं सीठे अधजगे होंठ
भीतर से रस का कटोरा भरा आता है

बीच का बसन्त यह
वैभव है अद्वितीय
डूब डूब जीना इसे
मन में सँजोना
यहीं लौट लौट आना, बह जाना, सींच देना प्राण
इतना कि रग रग में ममता-सा बस जाय ।
जीवन में कभी भी जो
प्यार का यह आदिम प्रकाश-पुंज
कटुता से, संशय से, आतुर हताशा से
मद्धिम पड़ जायेगा ––
तब यह जिलायेगा :
शुभ हो बसन्त तुम्हें
भेंटता पवित्र, मन्द मन्द हिलकोरता ।

एक ग्रौर बसन्त

बन्धु, तुम आ गये ?
सद्यस्नात, रंगारंग, खिले हुए
सब कुछ समझती हुई आँखों में वही प्रश्न !
ओ परिचित क्या कहूँ ?

मैंने यदि तुम्हें कभी
खुले हुए मन से पुकारा हो
तो तुम फिर आना बन्धु :
आना फिर इसी तरह
स्नेहभरे उजले कुतूहल से देखना
भीतर तक पैठती निगाहों से आर पार !
शायद वह कातर निवेदन न दे सकूँ
किन्तु उस क्षण भर में
पिघल पिघल मन में सलोना बन जाऊँगा :

देखना कि मुँदी हुई पलकों में, काँपती बरुनियों में
अनायास होठों में
वीणा-सी बजती भुजाओं में

आत्मा में, अंगों में, मन में, रोम-रोम में
अब भी वही हूँ मैं —
फ़र्क़ बस इतना है
अन्तर को मथ कर उमड़ते हुए
शब्दों से डरता हूँ :
          शब्द अभिचारी हैं
          कुछ दिन चमकने पर ओछे पड़ जाते हैं।

बावले बसन्त तुम आये कोंपलों के साथ
वह धूल, वही हवा, वही किलकारियाँ !
मैं ने यदि यह सब कृतार्थ हो
खुले हुए कक्ष के झरोखों से
गुज़र जाने दिया हो
तो तुम फिर आना,
फिर आना, फिर आना तुम !

अयाचित झोंका

हो गया कम्पित शरद के शान्त, झीने ताल-सा
    तन
    आह, करुणा का अयाचित एक झोंका
सान्त्वना की तरह मन की सतह पर लहरा गया
    कहाँ से उपजा ?
    कहाँ को गया ?

एक अर्ध-विस्मृत मित्र के नाम

लो मैं तुम्हें फिर यह ताज़ा खंजर देता हूँ
मैं जो तुम्हारे चारो ओर लिपटा हुआ मर गया हूँ
मुझे काट कर निकाल दो
और नया जन्म लो :
इस बार स्रोत पर ही वार करना
ताकि मैं फिर न उग आऊँ ।

तुम्हारे हाथ क्यों काँप जाते हैं ?
इसके पहले न जाने कितनी बार
तुम मुझे टुकड़े टुकड़े कर चुके हो
लेकिन हर बार तुम्हें यही क्यों लगता है
कि जब तक मैं उग न आऊँ
तुम भी मृतप्राय रहोगे ?

तुम पहले नहीं हो
जिसने दर्पणों से घिर कर
यह ज्ञान खो दिया
कि कौन सी दिशा आगे है

कौन सी पीछे :
और हैरान हो कर कभी तुम
अपनी छाया को मुँह चिढ़ाते हो
कभी फूट फूट कर रोते हो ।

दोष न तो तुम्हारा है
न आईनों का
दोष उस प्रकाश का है
जो आईनों से टकरा टकरा कर
तुम्हारी पुतलियों की ओर दौड़ता है ।

लो मैं तुम्हें फिर यह खंजर देता हूँ
मुझे नहीं
उस प्रकाश को ही काट कर निकाल दो
जो तुम्हारे चारो ओर लिपटा हुआ मर गया है ।

पिछले पड़ाव पर
जिसको तुम गाड़ आये हो
उसका दिल अब भी धड़कता है
और वही तुम्हें अपने पीछे जाती हुई
पैरों की आहट की तरह सुनाई पड़ता है :

तुम्हारे साथ मैं नहीं हूँ
अकेले तुम्हीं हो ।

सामने ज्योतिर्मय स्वप्न-गोलक के बीचोबीच
वह जो मुझ जैसी काली आकृति
निस्पृह धब्बे सी खड़ी दिखती है
वह मैं नहीं हूँ
वह तुम्हारी आँखों में पड़े हुए निशानों का प्रतिरूप है
जिन्हें तुम अभी तक निकाल नहीं पाये
क्योंकि उनके बिना तुम देख ही नहीं सकते ।

तुमने चारो ओर के जीवित आकारों को
इन चमत्कारी आँखों से घूर घूर कर
पत्थर के पुतलों में बदल डाला
और अब तुम निर्भय होकर
इस सुनसान रास्ते से गुज़र सकते हो
तुम्हें कोई नहीं रोकेगा ।

विश्वास करो
मैं बहुत पीछे छूट गया हूँ
तुम्हारे पास केवल निशानदार चमत्कारी आँखें हैं
जो सिर्फ़ तुम्हारी हैं ।

जब तुम अपने ही शिलालेखों से घिरे हुए
उस नये स्वर्ण-नगर में पहुँचोगे
तो मैं वहाँ तुम्हारा स्वागत करने नहीं हूँगा
ताकि तुम मेरी मुस्कराहट को व्यंग न समझो ।
फिर तुम्हें यदि यह लगे
कि तुम तुम न रह कर
सिर्फ़ एक सार्वजनिक घटना बन गये हो
तो तुम दुखी न होना।
क्योंकि तुमसे पहले भी लोग
इस शरण देने वाली शराब में
अपने को डुबो चुके हैं
सिर्फ़ तुम्हें अकेलेपन की आदत छोड़नी होगी ।

अकेलापन !
वह अनावश्यक रोशनी
जो अब भी तुम्हारे शयनकक्ष में जलती है
जिसके सहारे न वसीयतनामे लिखे जा सकते हैं
न दस्तावेज़ें पढ़ी जा सकती हैं
न पाँसे फेंके जा सकते हैं
न पैमाने लबरेज़ किये जा सकते हैं
न शकलें पहचानी जा सकती हैं,
जो खिड़की से निकल कर
बाहर के लोगों को सिर्फ़ इतना सा आभास देती है
कि शायद इस मकान में
लोग अब भी जी रहे हैं ।

बेशक अंधकार का अभ्यास पड़ जाने के बाद

तुम्हें लगेगा कि तुम बीच बीच में
तिरोहित हो जाते हो
लेकिन इस थोड़े समय की मृत्यु-अनुभूति के बदले
दिन में तुम्हारे चारो ओर
चकाचौंध कुन्दन की रोशनी होगी
जिसमें तुम बेदाग़ कटार की तरह तैरोगे।
तुम देखोगे
कि इस तरह टुकड़ों-टुकड़ों में जीना
बहुत कठिन नहीं है
और इसका नशा वे सब जानते हैं
जो अपने अपने स्वर्ण-नगरों में पहुँच कर
सार्वजनिक घटना बन गये हैं।

तुमने अच्छा किया कि इस उलझी हुई ग्रन्थि को
समय के हवाले कर दिया।

रोज़ सुबह जब तुम
पतिव्रता गृहिणी की तरह सदा खिली हुई
अपनी मेज़ पर
तारीखें बदलते हो
तो भविष्य कितना उजला दिखलाई पड़ता है
एक क्षण को लगता है कि तुम नागपाश तोड़ कर
बाहर आ गये हो —

चमकदार सड़कों पर बहता हुआ जन समुदाय
रंग बिरंगे मकानों की चिरस्थायी क़तारें
और रोज़ाना एक सी आवाज़ों की धड़कन
यह सब तुम्हारे हाथ के एक स्पर्श से
रोज़ रोज़ जीवित होता है।

कितना आरामदेह है
यह तारीख़ों के सहारे जीना !
खिड़की से दिखने वाले
इस नये, आत्मीय समय-प्रवाह में
न तो नीली, अथाह दरारें हैं
जो एकान्त साहसी आवाज़ों की माँग करती हैं
और न उन दरारों में से
वे लावारिस सवाल जन्म लेते हैं
जिनका काम महज़ सियाह रातों में
निरुद्देश्य भटकते रहना है।

अच्छा किया तुमने कि दरवाज़े खोल दिये
और अपने घर की सजावट
पेशेवर ठीकेदारों को सौंप दी
अब तुम्हारे घर में
ऐसी कोई तसवीर न होगी
जिसके लिए तुम्हें लोगों के सामने
जवाबदेह होने की ज़रूरत पड़े।

तुमने बहुत अच्छा किया कि लावारिस सवालों को
विजेता, महाबली समय के हवाले कर दिया।

मैं उन सिरफिरों की बात नहीं करता
जो ग़लत अँधेरी सुरंगों में
आबेहयात की तलाश में चले गये :
तुमने ठीक ही सुना है
कि इस विचित्र दुस्साहस के पहले
उनमें पागल सैलानियों की तरह उत्साह था
उनके हाथों में रंग-बिरंगे गुब्बारे थे
वे सीटियाँ बजा रहे थे
और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाकर
अन्धकार के मुख से लौटती हुई
अपनी ही प्रतिध्वनियाँ सुन रहे थे ।

किसी को खयाल न था
कि वे सचमुच चले जायेंगे
क्योंकि उन्हें बारम्बार बताया जा चुका था
कि युगों से अनन्वेषित इस सुरंग में
ज़हरीली गैस है जिसमें मशालें बुझ जाती हैं
और पुरानी किताबों में भी
किसी के वापस लौटने का ज़िक्र नहीं है
और ज़्यादातर लोगों का विश्वास है
कि आबेहयात जैसी कोई चीज़ नहीं है

बेशक हमने उनके वापस आने का इंतज़ार किये बग़ैर
उस रास्ते के मुहाने पर
ईंटें चुनवा दीं
कि फिर इस तरह की दुर्घटना न हो जाय
और अब इस पुरानी इमारत के चारो ओर

खुशनुमा बाग़ लगा दिये गए हैं
जहाँ लोग उद्यान-गोष्ठियाँ करते हैं
एक दूसरे की तसवीरें खींचते हैं
और क़हक़हे लगाते हैं ।

जब कभी तुम यहाँ आओगे
तो देखोगे
कि ज़माना सचमुच कितना बदल गया है ।

अगाध-द्रष्टा, बर्बर और एक तीसरा

हमने इक्कीस बार पृथिवी जीती
और इक्कीस बार बर्बरों को दान कर दी
यही कहते हुए
कि इसे भी बर्बरों को ले जाने दो —
क्योंकि हम जिस अगाध की तलाश में थे
बर्बरों का उससे कोई सरोकार नहीं था।

तब भी तुम उन जाते हुए मणि-मुकुटों की ओर
अपराधी तरसती आँखों से देखा करते थे
तब हमें नहीं ज्ञात था
कि भीतर ही भीतर
तुम इतने अशक्त हो गये हो
कि एक दिन इस तरह
नदी पार करके चले जाओगे
और रत्नजटित पादुकाओं को
अपने भीगे रेशमी बालों से ढँक दोगे,
अगर तुम्हें सचमुच उन चरणों में
सान्त्वना मिली होती

तो तुम्हारे हृदय में
इस तरह आग न जलती होती ।

उनसे हमारी कोई दुश्मनी नहीं है
हमने सुना है
कि जब तुम उनसे
हमारी निरपेक्ष अगाधता की बातें करते हो
तो वे कौतूहल और विस्मय के साथ
तुम्हारी ओर देखते हैं
तुम उन्हें कभी न समझा सकोगे
कि हम होड़ में न पड़ने वाले लोग
सचमुच कितने ख़तरनाक हैं ।

पृथिवी की तरह
हमने तुम्हें भी
बर्बरों को दान कर दिया होता
लेकिन जीवितों का दान करने की रस्म
हम में अभी तक नहीं पड़ी
इसीलिए अभी भी हम
नगर के परकोटों से
तुम्हारी आकृति को
बयावानों में लड़खड़ाते देखते हैं
और आश्चर्य करते हैं ।

आधी रात
जब बर्बर सेनानी
अपने अपने तम्बुओं में

रोशन पत्थरों पर सिक्के बजाते हैं
तुम क्यों उनके शिविरों से निकल कर
हमारे नगर की प्राचीरों पर
दस्तक देते हो ?
तुम जानते हो
दीवारें इस तरह नहीं खुलतीं ।
लौट जाओ
इन धधकती आत्मभर्त्सनाओं से
कोई लाभ नहीं ।

हमने भी अपनी मृत्यु की अफ़वाहें सुनी हैं
जो तुमने घिरे बाज़ारों में
करिश्मे दिखाने के बाद
उड़ाई थीं
और जिनके बाद तुमने
उपस्थित भीड़ से तालियाँ बजवाई थीं ।
लेकिन इन करामातों से क्या होगा ?
वे तुम्हारा विश्वास नहीं करेंगे
क्योंकि वे जानते हैं
कि हम अपने भस्मावशेषों से जन्म लेते हैं ।

जब तक अगाध का अस्तित्व है
तब तक हम न सही
कोई और
इस प्रशान्त सरोवर के किनारे
टहलता रहेगा

और पृथिवी को
बर्बरों के हाथ सौंपता रहेगा ।

अब भी हमारे नगर के सरोवर में
उड़ उड़ कर सफ़ेद हंस आते हैं
और हम अपनी बारहदरियों से
उमगते संगीत में लिपटे हुए
उन्हें देखा करते हैं —
वे ही जिनके कटे हुए सिर
कमलनाल सी गरदनों समेत
थाल भर मँगवा देने की याचना
तुमने कृपालु दण्डधारियों से
की थी —
अब भी हम इन्तज़ार कर रहे हैं
उस व्याध का
जिसकी इन खारे गोश्त वाले हंसों की ओर
दिलचस्पी हो ।

यह नगर, ये हंस, यह नैसर्गिक संगीत
ये तब तक सनातन हैं
जब तक हम या हमारी राख से
जन्म लेने वाला कोई
इनकी ओर देखता रहेगा,
सनातन हैं नगर के बाहर
बर्बरों के स्कन्धावार भी —
और शायद तुम या तुम्हारे जैसे भी

जो इन शान्त प्रासादों की ईंट से ईंट बजाकर
आक्षितिज सिर्फ़ बर्बरों का राज्य देखने के लिए
भयंकर ज्वाला में आजीवन तिलमिलाते रहेंगे।

आख़िरी सामना

जिस दिन तुमने नशे में उन्मत्त
लाल लाल आँखें लिये
करख़्त उद्घोषणा की
कि तुम्हारे चारो ओर श्मशान है
उसी दिन मुझे डर लगा था
कि कही तुम्हें अघोरियों की तरह
शव खाने की आदत न पड़ जाय —

तुम्हारे तीसरे नेत्र के प्रकाश में
नंगे कपाल तड़ तड़ टूटते हैं
थक्कों में जमा हुआ मुर्दार लहू
और गलती हुई मांसपेशियाँ
इनका स्वाद एक बार पड़ जाने पर
आसानी से नहीं छूटता :

और अब जीवित व्यक्तियों को गले लगाते समय
पैनी लालच के साथ तुम्हारे ख़ूबसूरत दाँत
हल्के हल्के चलनै लगते हैं

आँखें चमकने लगती हैं
और मुँह में पानी आने लगता है
फिर तुम, तुम नहीं रह जाते ।

नहीं, हवाले देने
और फूट फूट कर रोने की कोई ज़रूरत नहीं
मैं जानता हूँ
मैं निरस्त्र और निस्सहाय
मेरे पास सिवाय एक करुणा के कुछ भी नहीं
न जाने वह अगाध है भी या नहीं
लेकिन मुझे उस अनाविल निर्झर का पता है
जो दिन रात
अर्धविस्मृत कुण्डों में गिरता रहता है
जिसे मैंने देखा नहीं, सिर्फ़ सुना भर है
और सुन कर ही विश्वास कर लिया ।
तुम्हें कितनी करुणा चाहिए ?
कितनी जो तुम्हें इस शिकंजे से मुक्ति दिला सके ?

लेकिन मैं तुम्हें बतलाता हूँ
कि वह तुम्हें जला देगी
और उसे छूते हुए
तुम चीखोगे और बदहवास दौड़ोगे
क्योंकि वह तुम्हारे पास मृत्यु की शकल में आयेगी ।

तुम्हें लगेगा कि सैकड़ों लाल लाल सलाखें
तुम्हारे चारो ओर पट्टियों की तरह जकड़ दी गयी हैं
तुम छूट नहीं सकते
और तुम्हारी उद्दाम पिंडलियाँ
उसके मर्मान्तक ताप में
मोम की तरह गलती चली जा रही हैं।

फिर आयेगी सुबह
और खिड़कियाँ दरवाज़े खोल दिये जाएँगे
और एक मुस्काराता हुआ सूरज
नन्हीं लड़की की तरह हवा
मेज़ पर हिलता हुआ गुलाब
यह सब होगा :
लेकिन तुम नहीं होगे—

हवा, जैसी कि उसकी आदत है
फ़र्श पर पड़ी तुम्हारी राख को
उड़ा कर ले जायेगी न जाने कहाँ कहाँ
बिना तुम्हारे इतिहास की परवाह किये हुए
क्योंकि हवा, जैसी कि उसकी आदत है,
सबको उसके इतिहास से मुक्त करती है।

मैं उसे नहीं लाऊँगा
मैं तुम्हें सिर्फ़ वह बतलाता हूँ जो मुझे बतलाया गया है

वीरानों में, पर्वतों में, कछारों में
पगडण्डियों में,
क़हवाघरों में,
ओसभीगी सड़कों में ।

युद्ध-कविता

वक्तव्यों, दुर्घटनाओं, उद्‌बोधनों, आदेशों
और लम्बी व्याख्याओं से भरे हुए
अख़बार के इस गट्ठर को
कबाड़ी के हाथ बेच देने के बाद
मैं फिर अकेला, निरस्त्र
सामना करता हूँ भविष्य का ।

याददाश्त में रेंगती हुई ख़बरें
विकृत अफ़वाहों के साथ
रक्तबीज की तरह
युगनद्ध हो कर शान्त हो गयी हैं ।

ओ भविष्य, ओ परीक्षित, ओ हिरण्यगर्भ
अब भी मैं तुम्हारे चारो ओर
प्रकाश की तरह लिपटा हुआ हूँ :
वहाँ—
जहाँ निहत्थे सारथी
और लोलुप ब्रह्मास्त्र के बीच
आख़िरी घटना घटेगी
चुपचाप ।

छापामार दस्ते

इसी तरह हर रात
ठिठुरते पठारों पर बसी हुई
इस विशाल काल-वाहिनी के नायक
उत्सव मनाते हैं
पटाख़े छूटते हैं
और महताबियों के प्रकाश में
काली आकृतियाँ
इधर से उधर जाती दिखती हैं
झनझनाते वाद्य-यन्त्रों के साथ
रह रह कर
जयजयकार का कोलाहल
घटाटोप अँधेरे को चीरता
पहाड़ियों तक तैरता है।

क्या तुमने एक सिसकती हुई पुकार सुनी
जैसे कोई पत्थर के नीचे दबा हुआ
कराहता हो ?
बैठ जाओ, थोड़ी देर में

फिर कराह सुनाई देगी
बिल्कुल साफ़ और असन्दिग्ध
और उसके साथ ही उसे डुबाने के लिए
फिर वही पठारों में काँपता हुआ
मदोन्मत्त विजयोल्लास ।

हर रात यही घटित होता है
लेकिन इस कराह को कोई नहीं जानता ।
हमने दिन में वेश बदल कर
बाज़ारों में पड़ताल की
वे सिर्फ़ इतना जानते हैं
कि आसेतु पृथिवी को जीत कर
विजेता उत्सव मनाते हैं ।
इससे अधिक वे कुछ नहीं कहते ।

तुमने छापामार दस्तों की किंवदन्तियाँ सुनीं होंगी
जिनका ज़िक्र लोग
दबी ज़बान करते हैं ।
हमीं हैं वो
जो इस विशाल काल-वाहिनी में
रातों रात छापे मार कर
दरारों की तलाश करते हैं
और निर्जन पहाड़ियों में लौट जाते हैं
लगता है उनके सरदारों को
सचमुच हमारे अस्तित्व का ज्ञान नहीं है
क्योंकि उनके समारोहों में

कोई अन्तर नहीं पड़ता
और दूरस्थ टुकड़ियों में पड़ी दरारें
दिन चढ़ते भर जाती हैं।

तुम हमारा ज़िक्र इतिहासों में
नहीं पाओगे
और न उस कराह का
जो तुमने आज रात सुनी
क्योंकि हमने अपने को
इतिहासों के विरुद्ध दे दिया है :
लेकिन जहाँ तुम्हें इतिहासों में
छूटी हुई जगहें दिखें
और दबी हुई चीख का एहसास हो
समझना हम वहाँ मौजूद थे।

कुतो स्मर......

मैंने तुम्हारी मृत्यु को सामने देख कर
हिरण्मय ढक्कन उघाड़ दिया है
इससे अधिक मैंने कुछ नहीं किया ।

विराट कमल के आकार की
बनती बिगड़ती लपटें उठ रही हैं
और दसो दिशाओं में
खड़े हुए दिक्पालों पर
प्रकाश धधक रहा है ।

देखो, इस अग्निकुण्ड में
बल खाती हुई, मणियाँ उगलती, बदहवास शताब्दियाँ
जन्मेजय के नागों की तरह
आ आकर गिर रही हैं
और उनकी मज्जा से उद्वेलित
अग्निकमल
और भी व्याकुल हो होकर
ऊपर फुफकारता है

देखो,
यह तुम्हारे मेरुदण्ड को
गाँठ देने वाली
अनादि देवताओं की
चितकबरी जन्मतिथियाँ हैं

यह तुम्हारे ब्रह्मरन्ध्र को
आच्छादित करने वाले
यशस्वी विक्रमांकों के
नीले संवत्सर हैं

यह तुम्हारी पसलियों को
ओज देने वाली
अमोघ द्रष्टाओं की
धूसर भविष्यवाणियाँ हैं

यह तुम्हारे कूल्हों को
आकाश में स्थिर करने वाले
काष्ठमौनी सिद्धों के
कालजयी अनुग्रह हैं

ये तुम्हारे लिए रचे गये
स्वर्ण-युग हैं
ये संस्कृतियों के उत्थान-पतन हैं

ये महाज्ञान के क्षण हैं
ये चक्कर काटती हुई जयन्तियाँ हैं
ये स्वप्न में फूटने वाली उषाएँ हैं
ये हज़ार आँखों से देखने वाले मुहूर्त हैं
ये कृतार्थ करने वाले
भूत, वर्तमान, भविष्य हैं ।

वैसे ही जैसे
गिरिशृंगों से टूटी हुई नदियाँ
बहुत वेग से समुद्र की ओर अभिमुख दौड़ती हैं
तुम्हारे पंजर को बाँधने वाले
ये सारे काल-खण्ड
तुमसे टूट टूट कर
इस कमलाकार अग्नि-पुंज में प्रवेश कर रहे हैं ।

जो है
धधक धधक कर जल रहा है
और जो नहीं है
वह भी धधक धधक कर जल रहा है
देखो
इस असीम यातना के क्षण में
तुम्हारे लिए कहीं भी शरण नहीं है ।

जिस दिन पहली बार
तुम्हारी करकती आँखों को आश्वस्त करने के लिए
सत्य का मुख
हिरणमय पात्र से ढका गया
यह सब का सब
उसी दिन व्यतीत हो चुका था :
स्मरण करो, अपने किये हुए का स्मरण करो।

देखो,
इस निर्मोही महादाह में
कुछ नहीं बचता
न प्राण, न आत्मा, न मेधा, न सकल्प, न मर्यादाएँ
न स्मृतियों की गुंजलक
न होलिका के दुपट्टे की तरह
ओढ़े हुए पितर
यह सब का सब
पहले से ही भस्म हो रहा है
तुम्हारे लिए कहीं भी शरण नहीं है।
स्मरण करो,
अपने किये हुए का स्मरण करो।

किसने पातालों से फूटती हुई
इस शरण-हीन स्वाहा का निर्माण किया ?
किसने इन घूरते दिक्पालों को
अस्फुट प्राचीरों की तरह
अन्तरिक्ष में खड़ा किया ?

किसने तुम्हारे अंग-प्रत्यंग पर
गोदने की तरह लिखे हुए
प्रसिद्ध इतिहासों की समिधा दी ?
इस असीम यातना के क्षण में
अपने किये हुए का स्मरण करो ।

मृत्यु के सुनसान दर्पण् में प्रतिबिम्बित
केवल यह
फुफकारता हुआ
अग्निकमल बच रहता है :

यही परम्परा है, यही क्रान्ति है
यही जिजीविषा है
यही आयु है, यही नैरन्तर्य है ।
इस निष्कलंक सर्वनाश के अतिरिक्त
कोई नैरन्तर्य नहीं है ।

तुम्हीं हो
जो इसके द्वारा
अपनी विह्वल शताब्दियों को
धारण करते हो
और तुम्हीं हो

जो विनाश को प्राप्त होकर
इस तरह लय-युक्त जल रहे हो।

देखो,
इस प्रतिच्छवि में
रश्मिव्यूह से आवृत्त
अग्नि-पुरुष दिखता है :
जहाँ तुम्हारा शिर था, वहाँ लपटें हैं
वही उसका शिर है
जहाँ तुम्हारी भुजाएँ थी, वहाँ लपटें हैं
वही उसकी भुजाएँ हैं
जहाँ तुम्हारे चरण थे, वहाँ लपटें हैं
वही उसके चरण हैं।

मैंने सत्य के मुख पर ढके हुए
हिरण्मय पात्र को उघाड़ दिया है।

सन्ध्या चित्र—१

उत्तर में एक तारा
आधे आसमान तक
कत्थई प्राचीर सी
रेखा
गहराती संध्या की ।

पच्छिम की दीप्त लालिमा से
अदृश्य कोई पक्षी
फेंकता है चीख़
कमन्द-सी
परकोटे पर ।

सन्ध्या चित्र—२

हज़ार हज़ार तोते
छर्रे की तरह छूटते हैं
पीछे, ऊँची मेहराबों से :
आकाश में
खाते हैं ग़ोते ।

सलाख़ों के पीछे से
सेंदुर पुता हुआ
झाँकता है कोई चेहरा
रँगे हाथ
खिलखिलाता ।

सन्ध्या चित्र—३

रह रह कर छेड़ती-सी हवा
गुलाबी पतंग के पीछे
भरे भरे
गुदगुदे गुलाबी बादल ।

कंगूरे के ऊपर का हवामुर्ग़
खिलाड़ी
पेट के सहारे नाचता है
चोंच से पूँछ पकड़ने के लिए ।

सन्ध्या चित्र—४

नम छींटेदार पुरवाई ।
उड़ी उड़ी फुहार
आख़िरकार
गिरती है
नीम की हज़ार
नन्हीं मुन्नी गदोलियों पर ।

नाज़ुक पत्तियों से बोझल
यूकेलिप्टस की साँवली डालें
यहाँ से वहाँ तक
फैलती हैं :
लौट लौट आती हैं ।

ऊपर घटाटोप ।

सन्ध्या चित्र--५

फिर इसी एकान्त सूने कगारे पर
खड़े होकर
तुम्हें मैंने पुकारा ।

दूर पच्छिम क्षितिज पर
हरी-लालिम शान्ति में लिपटा हुआ
तकता हुआ सूरज ।

चिन्तित व्योम के नीचे
मोड़ लेती, बाढ़ की
पेंग भरती घाघरा ।

फरहरे वाले शिवालय के बग़ल में
झुकी पीपल डाल
आचमन करती नदी का ।

कहाँ हो ?
तुम कहाँ हो ?

सन्ध्या चित्र--६

एक नीली चट्टान के कगार पर
प्रकट होता है एक फूलता हुआ बुलबुला
बारीक, बारीक, बिल्लौरी....

काँप काँप कर तैर जाता है
अथाह शून्य में
और नीचे तल तक पहुँचने के पहले
विलीन हो जाता है :

शाम की लाली
डूबते हुए दिल की तरह इन्तजार करती है
दूसरी धड़कन का :
फिर एक दूसरा बुलबुला नीली चट्टान की कोर पर
थरथराता है
और तैर जाता है ।

मैं इस सन्तुलित कारागार के जँगलों से
हवा के स्पन्दन की तरह
निकल जाना चाहता हूँ :
लेकिन कहाँ ? कहाँ ?

दोपहर चित्र

धूः धूः धूः

आग और ग़ुबार का
लाल लाल बवण्डर
पछाड़ खाता है
मकानों, मैदानों, नदियों, वीरानों पर :

बन्द दरवाज़े से लगा हुआ
आहट सुनता दबीज़ परदा
हिल उठता है ।
सफ़ेद कबूतरों का जोड़ा
गोद में बैठे बच्चों-सा
खपरैल के नीचे कार्निस से
कमरे की भीगी फ़र्श को देखता है

दुबके हुए लोग, लू ।

तीसरे पहर का चित्र–१

थक जाता है जैसे
वीरान सड़कों पर पड़ता हुआ
आवाज़ों का पहरा :
आँगन के गुलाब पर
दीवार की छाया पड़ती है ।

सिंची हुई क्यारी में
घास की नरम जीवित पत्ती
उतना ही काँपती है
कि बवण्डर की छोड़ी हुई धूल
झड़ जाय ।

अमरूद की शाख़ से
झाँकती है गिलहरी
कभी मुझको, कभी घास को, कभी क्यारी को ।
डाल के बाहर की दुनिया से
डरी हुई जीती है

चुपके से उतर कर
अकेले में
क्यारियों में बहते हुए पानी को
पीती है।

तीसरे पहर का चित्र–२

पास के बँसवट से
        अचानक चिड़ियों की चहचहाहट

शायद वह मोटी काली बिल्ली
        जो कभी कभी मुँडेर पर
                पूँछ उठाये दिख जाती है
                        नाले को पार कर रही होगी।

नदी मूल

नदी मूल में
जहाँ रेंगते हुए साँपों का पहरा रहता है
क्या तुम फावड़ा लेकर जा सकते हो ?
वहाँ पेड़ों का अंधेरा कुंज है
और भीतर जाने का कोई प्रवेश द्वार नहीं है
तुम्हें उलझी हुई डालियों को काट कर
रास्ता बनाना पड़ेगा
और भीतर झाँकते ही
सर उठा कर
वयस्क भुजंग फुफकारेंगे ।
जब वे तुम्हारी आँखों से आँखें मिला
तुम्हारी ओर सन्नद्ध प्रश्न मुद्रा में देखेंगे
तब तुम उनसे क्या कहोगे ?

नदी मूल
असंख्य झाड़ियों, गिरी हुई पत्तियों
और केंचुलों के गुज्झर से
अवरुद्ध हो गया है

और उनके बीच से
सिर्फ़ एक पतली छनी हुई धारा
पेड़ों, लताओं को सींचती हुई बहती है ।

क्या तुम्हारे पास वह मणि है
जिसे तुम तत्काल फेंक कर
कुंज में
शीशमहल की तरह उजाला कर सकते हो ?
तब वे चकाचौंध फणिधर
उस मणि के चारो ओर
रस्सियों की तरह लिपट जायेंगे
और रोशनी का रंग उनके रक्त की तरह
लाल हो जायेगा ।

उसी समय तुम्हें बहुत फुर्ती से
नदी मूल पर फावड़ा चलाना होगा
ताकि मुहाने पर अटका हुआ पत्थर
खण्ड खण्ड हो जाय
और जिस तरह ताजे कबन्ध से
खून का फ़ौवारा निकलता है
वैसे ही अमृत-सी छलछलाती हुई धारा
बाहर निकलेगी ।

फिर तुम मुड़ कर न देखना
और बिजली की तरह
अपने बनाये हुए रास्ते से

बाहर निकल आना ।
तुम देखोगे कि सारी उपत्यका में
गरजता हुआ शोर भर गया है
और पानी बड़े वेग से बहता
चला जा रहा है ।

लेकिन तुम्हारी अमूल्य मणि
खो जायेगी
तुम फिर उसकी लालच में न पड़ना
वह तुम्हारी नहीं
उन्हीं वयस्क भुजंगों की है
और तुम्हें इसीलिए दी गयी थी ।

बन्द इमारत की आवाज़

आधी रात
कुएँ की गड़ारी बोलती है
कौन अलबेली नार
झमाझम पानी भरती है ?

अभी कुछ होगा

गला काट देने पर
मुर्ग़ तड़पता है
साफ़ लगता है
अभी कुछ होगा ।

थोड़ी देर में
मुर्ग़ मर जाता है ।

समुद्र

समुद्र
कुढ़ता हुआ आया
और घरौंदे उठा कर ले गया ।

चौकन्ना जंगल

निराले में,
रौंदी हुई सड़क के किनारे
नामालूम पौधा
सर उठा कर टोह लेता है

कंकरीट के नीचे दबा हुआ जंगल
इस समूचे शहर को
एक दिन
निगल जाने का अवसर ताकता है।

सुनसान शहर

मैं बरसों इस नगर की सड़कों पर आवारा फिरा हूँ
वहाँ भी जहाँ
शीशे की तरह
सन्नाटा चटकता है
और आसमान से मरी हुई बत्तखें गिरती हैं ।

शायद अनगिनत किरनें

शायद अनगिनत किरनें
मेरे कन्धों पर
भारी शहतीरों की तरह रखी हुई हैं

मैं उन्हें देख नहीं पाता
लेकिन खड़े होते ही
हड्डियों को तोड़ने वाला दर्द महसूस करता हूँ।

अलविदा

तुम ख़ुद हाथ में रेत लेकर
उस में चमकते चाँदी के ज़र्रे देखते रहे
तुम्हें किसी ने नहीं भरमाया
और उसमें तुमने देखीं
दीवारें टटोलती हताश भीड़ें
सुरंगों के पार जलती हुई स्वर्ण-लंकाएँ
गटर में छुरे फेंकते सियाह चेहरे
समुन्दर की तरह काँपती लड़कियाँ
दुर्घटनाएँ लिए जाती रेलगाड़ियाँ....

तुम्हें यह भी ख़याल न रहा
कि कितना समय गुज़र गया है
जो लोग तुम्हारे साथ यहाँ तक आये थे
वे बार बार तुम्हें पुकार कर
चले गये
क्योंकि उनकी अपनी ज़िम्मेदारियाँ थीं
और शाम हो जाने के बाद

वे इस बदनसीब इमारत में रुकने के लिए
तैयार नहीं थे ।

रात होते ही
खिड़की के पार से
वह हसीन चेहरा झाँकेगा
जिसके बारे में तुम सुन चुके हो
तब उस परिस्थिति का मुक़ाबला
तुम अपने भीतर की किन ताक़तों के सहारे करोगे
यह तुम्हें उसी समय मालूम होगा,
मैं इसमें तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकूँगा
मैं ज़्यादा से ज़्यादा इतना बता सकता हूँ
कि या तो यह होगा
कि सुबह आकर
मुझे तुम्हारा नाम
उन लोगों की फ़ेहरिस्त में लिखना होगा
जिनके वापस आने की कोई उम्मीद नहीं
या फिर....

या फिर क्या होगा, यह बताना
मेरे लिए कठिन है
क्योंकि आज तक इसके अतिरिक्त कुछ
घटित हुआ ही नहीं
सिर्फ़ पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती हुई
एक अफ़वाह है
कि यातना भरी मृत्यु के अलावा भी

एक विकल्प है
उसकी क्या शकल है
और किस तरह वह घटित होगा
इसकी कोई साफ़ तसवीर
अफ़वाह में शामिल नहीं है ।

यों यह मृत्यु यातना भरी है
यह भी मैं अन्दाज़ से कहता हूँ
क्योंकि मैंने आज तक उस क्षण को देखा नहीं
जब हसीन चेहरे
और भटके हुए मुसाफ़िर का साक्षात्कार होता है
हो सकता है
कि वास्तविक अनुभूति कुछ और हो
क्योंकि ऐसी रातों में
देर तक मैंने
अट्टहास और संगीत सुने हैं
क़रीब तीसरे पहर जाकर
भयानक चीख़ सुनाई पड़ती है :

इस लिए यह कहना
कि इसमें सब कुछ यातना ही है, कठिन है
हो सकता है इसमें सुख भी हो
या सौन्दर्य का तेज़ प्रकाश ही
आँखों पर छा जाता हो
क्योंकि इतना मैं ने ज़रूर देखा है
कि सुबह सब कुछ ज्यों का त्यों हो जाने के बाद

यह सारा वातावरण
बेहद ख़ूबसूरत हो जाता है
जैसे दुर्घटना को पचा लेने के बाद
जंगल ख़ूबसूरत हो जाता है ।

मुझे सख़्त ताज्जुब होता है
कि इस थोड़े समय के साथ के कारण
लोग तीसरे पहर
मेरा नाम लेकर क्यों पुकारते हैं
क्या आख़िरी आदमी
इतना गहरा सहारा देकर विदा होता है ?
मैं तुमसे बता चुका हूँ
कि मैं चाहूँ भी
तो तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता
इसलिए अगर तुम मन्ज़ूर करो
तो सिर्फ़ इतना कहना चाहूँगा
कि मेरा नाम लेकर न पुकारना ।

सुनो,
बाहर बाग़ से
हल्की सुरीली आवाज़ आ रही है
जैसे कोई बाँसुरी का आरम्भ कर रहा हो
यही वह वक़्त है
जब यहाँ से जाता हुआ मैं
फ़रिश्ते की तरह दिखाई देता हूँ

अक्सर लोगों ने मुझसे इस वक़्त कहा है
कि मैं लालटेन ऊँची कर दूँ
ताकि वे मेरा चेहरा अच्छी तरह देख सकें
तुम चाहो तो
मैं तुम्हारे लिए भी यही कर सकता हूँ
मैं नहीं जानता कि मेरा चेहरा
तुम्हें किन सुनसान समुद्र तटों
या अँधेरी गुफाओं
या शान्त डरावने शिखरों की याद दिलाता है
लेकिन सच यह है
कि मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है
जिसे मैं तुम्हें दे जाऊँ
मेरे जाते ही
यहाँ जहाँ मैं खड़ा हूँ
तुम्हें एक ख़ालीपन का एहसास होगा
जिसे तुम हाथ बढ़ाकर
छूने की कोशिश करोगे ।

शायद इस रेत को फिर
अंजलि में उठा कर देखने से काम चल जाय
बशर्ते कि तुम इस तरह रात काट सको
इससे तुम अपनी आँखों को
बाहर देखने से रोक सकोगे
लेकिन कानों का क्या करोगे
उनमें तो यह दिलकश रागिनी
और पास, और पास आती हुई गूँजेगी
फिर तुम अपने को कैसे रोकोगे ?

या शायद तन कर खड़े होने से काम चले
वह नहीं जो भविष्य के नाम पर
चुनौतियाँ देने से उपजता है
बल्कि वह जो आख़िरी निर्णय के बाद सहसा
बिल्कुल अकिंचन हो जाने से
उत्पन्न होता है,
तब शायद तुम्हारी आँखें
न सिर्फ़ शीशे के पार
बल्कि शीशे के पार दिखती हुई छवि के भी आरपार
देखने लगें
तब तुम देखोगे कि यहाँ से वहाँ तक
अटूट अँधेरा है
जो माँद में मरते हुए जानवर की तरह
साँस लेता है।

मगर मैं यह सब
सिर्फ़ अनुमान के भरोसे कह रहा हूँ
क्योंकि मेरा अनुभव बहुत सीमित है
और मेरे लिए वे सारे रास्ते बन्द कर दिये गये हैं
जिनसे होकर
चमकता हुआ जोखम प्रवेश करता है
और ख़ून की आख़िरी बूँद तक को
आत्मा में बदल डालने की माँग करता है
सच तो यह है
कि इस सारे वातावरण की तरह

मैं भी सिर्फ़ इन्तज़ार कर रहा हूँ
उस विकल्प का
जिसकी अफ़वाह
रात की हवा की तरह
समय के एक छोर से दूसरे छोर तक
मँडराती हुई सुनाई पड़ती है ।

आवाज़ आ रही है ।
सुबह शायद एक नये घटनाक्रम का आरम्भ होगा
हो सकता है तब मैं न रहूँ
शायद मेरा न रहना भी
उस घटनाक्रम की ज़रूरी कड़ी हो
क्योंकि उस अप्रत्याशित को
न मैं जानता हूँ, न तुम
न रेत में चमकती हुई तसवीरें
न ये पत्थर, न वनस्पतियाँ
जो इन्तज़ार कर रही हैं
मगर मुझे कोई ग़म न होगा
क्योंकि मुझे जिन शर्तों से बाँध दिया गया है
वहाँ इन्तज़ार और अस्तित्व दो चीज़ें नहीं हैं
उसके ख़तम होने के बाद
मेरे लिए रह ही क्या जायेगा ?

सुरीली आवाज़ आ रही है
और पेड़ों की पत्तियाँ जगमगा रही हैं
मेरे जाने का वक़्त हो गया है

क्योंकि अब तुम भी तार की तरह काँप रहे हो।
मैं नहीं जानता कि तुम्हारे भीतर
पैर के अँगूठे से लेकर गले तक
जो कुहराम बज रहा है
उसकी परिणति क्या है
मगर मैंने जो कुछ कहा है
उसे तुम भूल जाना
या यह कहना भी फ़िज़ूल है
क्योंकि उस चेहरे के खिड़की तक आते ही
तुम ख़ुद ही सब कुछ भूल जाओगे
तुम्हारी आँखें पेड़ की पत्तियों की तरह जगमगाने लगेंगी
और तुम्हारे भीतर से उसका जन्म होगा
जो तुम्हारी ओर से
बिना तुम्हारी अनुमति के बोलता है
वही तुम्हारी रक्षा करता है
या फिर....

आवाज़ आ रही है।
तुम ख़ुद हाथ में रेत लेकर
उसमें चमकते चाँदी के ज़र्रे देखते रहे
तुम्हें किसी ने नहीं भरमाया....

